



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

“अष्टांग योग” की प्रासंगिकता : “व्यक्तित्व विकास” के विशेष संदर्भ में

¹शैलेन्द्र वासनिक, ²डॉ. भगवन्त सिंह

¹शोधार्थी, दर्शन एवं योग अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

²से.नि. आचार्य एवं अध्यक्ष, दर्शन एवं योग अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध सारांश :-

व्यक्तित्व से अभिप्राय है व्यक्ति की समस्त बाह्य एवम् आन्तरिक विशेषताओं का सम्मिश्रण, जो उसे वातावरण से समायोजन करने योग्य बनाता है। व्यक्तित्व विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आदर्श व्यक्तित्व के गुणों को धारण करने का प्रयत्न किया जाता है। आधुनिक युग में मानव विभिन्न संसाधनों का उपयोग कर भौतिक उन्नति करता जा रहा है किन्तु जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में उसकी अपूर्णता बनी हुई है यह अपूर्णता व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। व्यक्तित्व विकास के गूढ़तम रहस्यों को खोजने तथा जीवन की सार्थकता हेतु अष्टांग योग साधना पद्धति का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी एवम् महत्वपूर्ण है।

अष्टांग योग की प्रासंगिकता के आधार पर प्रस्तुत आलेख में व्यक्तित्व विकास को विकसित करने की सार्थकता पर विचार करने का प्रयास किया गया है। शारीरिक, मानसिक, संवेदनात्मक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक विकास के लिए अष्टांग योग एक सम्यक मार्ग है जिनका अनुशरण कर व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकता है। अष्टांग योग तथा व्यक्तित्व विकास के मध्य सम्बन्ध है। शोध आलेख के माध्यम से अष्टांग योग का व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सकारात्मक प्रभाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द – व्यक्तित्व, व्यक्तित्व विकास, चित्त, योग, अंतरंग, बहिरंग, अष्टांग योग, समाधि, मोक्ष एवम् कैवल्य।

प्रस्तावना :-

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों की यह विशेषता रही है कि उसने मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास एवम् गठन करने हेतु मानव मात्र को सदा ही उत्प्रेरित किया है। मानव व्यक्तित्व का विकास एक सतत् प्रक्रिया का परिणाम है यह प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म लेने के कुछ समय पश्चात् से ही प्रारम्भ हो जाती है। वर्तमान समय में व्यक्तित्व सम्बन्धित अनियमितताओं के कारण अनावश्यक तनाव, अवसाद, चिन्ता, आत्महीनता एवम् असुरक्षा की भावना में लगातार वृद्धि हो रही है जिसके कारण मानव समाज अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहा है। सम्पूर्ण मानव जाति ने अपने सुख भोग हेतु कई चमत्कारिक व वैज्ञानिक साधन एकत्रित करने के पश्चात् भी व्यक्ति अपने आन्तरिक एवम् बाह्य जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ है। व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्याओं का सम्यक् निदान न हो पाने के कारण मानव समाज सांस्कृतिक, सामाजिक एवम् पारिवारिक आदि विकृतियों से पूरी तरह प्रभावित दिखाई दे रहा है इन अपूर्णताओं के निदान हेतु मार्ग भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में विद्यमान है जिनमें बतलाया गया है कि मानवीय व्यक्तित्व की गहरी परतों की सूक्ष्म जानकारी ही व्यक्तित्व विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। आधुनिक समय में व्यक्तित्व सम्बन्धित अनियमितताओं के निदान एवम् व्यक्तित्व का अधिकाधिक उच्चतम विकास कैसे किया जाए? इस समस्या का समाधान खोजना आज की एक प्रमुख एवम् अनिवार्य आवश्यकता बनकर समाज एवम् राष्ट्र के समक्ष एक चुनौती है।

शाब्दिक रूप से व्यक्तित्व "अंग्रेजी का शब्द 'Personality' लैटिन भाषा के 'Persona' शब्द से विकसित हुआ जिसका अर्थ 'नकाब' (Mask) है। यह 'Persona' शब्द ग्रीक शब्द 'Prosopon' से लिया गया प्रतीत होता है जिसका अर्थ है 'आकृति' अथवा 'चेहरे का भाव'। इस शब्दार्थ के आधार पर 'व्यक्तित्व' का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप से है, अर्थात् जैसा हम उसे देखते हैं।"¹ परन्तु व्यक्तित्व के इस अर्थ के सन्दर्भ में भारतीय ऋषियों, मनीषियों एवम् महापुरुषों के विचारों में असहमति एवम् असन्तुष्टि प्रदर्शित होती है। भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में व्यक्तित्व शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता आया है। सांख्यकारिका के अनुसार – "व्यक्तित्व का सम्बन्ध अनादिकाल से है। उसमें कर्म के अनुरूप व्यक्तित्व में परिवर्तन व संस्कारों का अंकित होना माना जाता है, तथा मृत्यु के पश्चात् प्रारब्ध कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करना माना जाता है। इस विशिष्ट भोग को भोगने के लिये ही मनुष्य नया शरीर ग्रहण करता है।"² इस तरह कर्मों के अनुरूप व्यक्तित्व में परिवर्तन का निर्धारण पूर्व जन्म से ही हो जाता है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि:-

“बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।”³

अर्थात् हे अर्जुन ! मेरे और तेरे पहले बहुत जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता; क्योंकि पुण्य-पाप आदि के संस्कारों से तेरी ज्ञान शक्ति अच्छादित हो रही है। परन्तु मैं तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव वाला हूँ, इस कारण मेरी ज्ञान शक्ति आवरण रहित है, इसलिए मैं हे परन्तप ! मैं (सब कुछ) जानता हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित "व्यक्ति के तीन गुण प्रकार बताये हैं- सत, रज एवम् तम, जिनके आधार पर व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित होता है। सतोगुण वाला व्यक्ति परोपकार व स्वार्थहीनता विकसित कर लेता है, रजोगुण वाला व्यक्ति स्वार्थपूर्ण, इच्छालु व विषयभोगी व्यवहार करता है और तमोगुण वाला व्यक्ति आलस्य व अकर्मण्यता

विकसित कर लेता है। गीता में व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ बनने को अच्छा बताया गया है जिससे उस पर सुख-दुःख का कोई प्रभाव न पड़े तथा वह राग, द्वेष, क्रोध, भय एवम् अहंकार से मुक्त हो जाए।⁴ व्यक्तित्व मनुष्य के व्यवहार की वह शैली है जिसे वह अपने आंतरिक तथा बाह्य गुणों के आधार पर प्रकट करता है। यह व्यक्ति की समस्त बाह्य (शारीरिक) विशेषताओं तथा आंतरिक (मानसिक) विशेषताओं का सम्मिश्रण है, जो उस व्यक्ति को वातावरण से समायोजन करने योग्य बनाता है।

“ पातंजलयोग मानवीय व्यक्तित्व के चरम एवम् परम विकास की एक विज्ञान सम्मत आध्यात्मिक प्रणाली है। यह मनुष्य के मूलस्वरूप को आत्मा के रूप में समस्त दिव्य संभावनाओं से युक्त मानता है किंतु अज्ञानतावश अविद्या के प्रभाव के कारण मनुष्य अपने इस मूलस्वरूप एवं दैवीय उत्तराधिकार को विस्मृत कर बैठा है। जीवन के दुःख संताप, पीड़ा-पतन, असफलता-दुर्भाग्य से नारकीय अनुभव बनने का मुख्य कारण यह आत्मविस्मृति ही है। पातंजलयोग दर्शन इससे उबरने का व्यवहारिक एवं प्रयोग सम्मत उपचार प्रस्तुत करता है। वस्तुतः योग दर्शन जहाँ आध्यात्मिक लक्ष्य या जीवन के आत्यन्तिक लक्ष्य की प्राप्ति का अचूक साधन है, वहीं मानव जीवन को सार्थक और सफल बनाने का सर्वोत्कृष्ट मार्ग भी।⁵ जिसमें उच्च, मध्यम एवम् निम्न कोटी के साधको के लिये क्रमशः – अभ्यास-वैराग्य, किया-योग एवम् अष्टांग-योग साधना पद्धतियों का उल्लेख है। अष्टांग योग साधना पद्धति अत्यन्त सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक है जिसकी साधना द्वारा साधक शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा सामाजिक रूप से समग्र व्यक्तित्व का विकास प्राप्त करता है।

व्यक्तित्व-विकास में अष्टांग योग की भूमिका –

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग कोई मत, पंथ अथवा संप्रदाय न होकर जीवन जीने की कला तथा व्यक्तित्व-विकास हेतु सहायक मार्ग है। सांसारिक दुःखों के आत्यन्तिक एवम् एकान्तिक निवृत्ति का एक मात्र सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक साधना पद्धति है जिसके अनुसरण द्वारा ही वैयक्तिक एवम् सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य एवम् बौद्धिक जागरण, मानसिक शांति तथा आत्मिक आनन्द की अनुभूति हो सकती है। योग साधना को अनुप्रयुक्त दर्शन के रूप में मान्यता दिलाने का श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है, क्योंकि उन्होंने योग की विभिन्न प्रणालियों का समन्वय करके उन्हें सैद्धान्तिक रूप से सूत्रशैली में निबद्ध कर शास्त्र का रूप प्रदान किया। अतः योग दर्शन का प्रतिपादक ग्रन्थ ‘पातंजल योगसूत्र’ ही है। योगसूत्र चार भागों में विभक्त है— समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद, जिसके माध्यम से महर्षि पतंजलि ने चित्त की शुद्धि, विवेकख्याति तथा कैवल्य प्राप्ति हेतु अष्टांग योग का मार्ग बतलाया है। जिसका वर्णन उन्होंने साधनापाद में इस प्रकार किया है :—

“योगाङ्गाऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।।”⁶

अर्थात् योगांगों का अनुष्ठान करने से चित्त के मल का अभाव होकर वह सर्वथा निर्मल हो जाता है। फलस्वरूप ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि विवेकख्याति पर्यन्त पहुँच जाती है अर्थात् आत्मा का स्वरूप बुद्धि, अहंकार तथा इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न प्रत्यक्ष प्रदर्शित होता है। योगसूत्र में समाधि तक पहुँचने के मार्ग को अष्टांग योग कहा जाता है इस संदर्भ में पतंजलि ने समाधिपाद के अगले सूत्र में अष्टांग योग का वर्णन इस प्रकार किया है :—

“यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।”⁷

अर्थात् अष्टांग योग के अंग इस प्रकार हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवम् समाधि। इन योगांगों को क्रमशः दो भागों में विभक्त किया गया है — बहिरंग एवम् अंतरंग। बहिरंग के अंतर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवम् प्रत्याहार आते हैं जिनका सम्बन्ध बाहर की क्रियाओं से है। अंतरंग के अंतर्गत धारणा, ध्यान एवम् समाधि आते हैं जिनका सम्बन्ध अंतःकरण से है। जिसे महर्षि पतंजलि ने “संयम”⁸ भी कहा है जिसका अनुसरण कर मानव व्यक्तित्व विकास तथा जीवन के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है। यम और नियम अष्टांग योग के मूल आधार है यम के संदर्भ में मनुस्मृति में कहा गया है :—

“यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।।”⁹

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष नित्य निरन्तर यमों का पालन करता हुआ ही नियमों का पालन करें, केवल नियमों का नहीं; जो यमों का पालन न करके, केवल नियमों को करता है वह साधनपथ से गिर जाता है।

1. यम — अष्टांग योग का प्रथम अंग है— “यम”। बहिरमुक्ता की सबसे अन्तिम अवस्था मानव का अन्य सभी प्राणियों के साथ व्यवहार है। इसलिये सर्वप्रथम इस व्यावहारिक जीवन को यम द्वारा सात्विक और दिव्य बनाकर व्यक्तित्व विकास को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जिसके अनुष्ठान द्वारा इन्द्रियों एवम् मन को हिंसा आदि अशुभ भावों से हटाकर आत्म केन्द्रित किया जाता है। यम कुल पांच भागों में विभक्त हैं :—

“अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।”¹⁰

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—

ये पांच यम हैं।

क. अहिंसा— मन, वाणी और कर्म से किसी को भी हानि न पहुंचाना ही अहिंसा है। पर-दोष, निन्दा, चुगली, क्रोध, कटुवाणी आदि के द्वारा किसी को कष्ट या पीड़ा देना हिंसा है। शुद्ध प्रेम ही इसका आधार है।

ख. सत्य — वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही सत्य है। अंतःकरण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो, हित की भावना से, कपट रहित प्रिय शब्दों में वैसा का वैसा ही प्रकट करने का नाम सत्य है। अपने व्यावहारिक जीवन में सत्य को बिना उतारे मन की शांति एवम् एकाग्रता का समावेश होना सम्भव नहीं है यह आपसी प्रेम व विश्वास बढ़ाने का सबसे अच्छा माध्यम है।

ग. अस्तेय— अस्तेय का अर्थ है — चोरी न करना। किसी दूसरे व्यक्ति के स्वत्व को मन, वाणी तथा कर्म से अपना बनाने तथा अनीतिपूर्वक हासिल करने का प्रयास करना चोरी अथवा अस्तेय कहलाता है जिसका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

घ. ब्रम्हचर्य— यह दो शब्दों से मिलकर बना है— ब्रम्ह एवम् चर्य, जहाँ ब्रम्ह से तात्पर्य महान तथा चर्य से तात्पर्य आचरण से है इस प्रकार महान आचरण करने वाला ब्रम्हचारी कहलाता है। मनुष्य का सबसे महान कर्म मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण है इसलिए अपने जीवन में ब्रम्हचर्य को महत्व देना आवश्यक है।

ङ. अपरिग्रह— अपरिग्रह से तात्पर्य है — संग्रह न करना। अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु अथवा धन का संग्रह करना अनुचित है। वे लोग जो संग्रह करने में विश्वास करते हैं उनका सारा समय वस्तुओं की रक्षा करने की चिन्ता तथा फिक में ही बीत जाता है ऐसे व्यक्ति का मन सदा अशांत बना रहता है।

2. नियम — योगांगों में दूसरा आधारभूत अंग नियम है। मन को नियंत्रित करने के लिए उसे नियमों के कड़े अनुशासन में रखना चाहिए, इस संदर्भ में महर्षि पतंजलि बतलाते हैं :-

“शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।”¹¹

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान ये पांच नियम हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है :-

क. शौच— शौच से तात्पर्य है — शुद्धि अथवा पवित्रता। यह दो भागों में विभक्त है — बाह्य एवम् अभ्यान्तर। इस संदर्भ में महर्षि मनु ने बहुत ही सुन्दर बतलाया है :-

“अदिभर्गात्राणिशुद्ध्यन्ति मनसत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।”¹²

अर्थात् साधक को प्रतिदिन जल से शरीर की शुद्धि, सत्याचरण से मन की शुद्धि, विद्या और तप से आत्मा की शुद्धि तथा ज्ञान के द्वारा बुद्धि की शुद्धि करनी चाहिए। मन, बुद्धि तथा आत्मा की शुद्धि के लिये ऋषियों एवम् मनीषियों द्वारा बताये गये मार्गों का अनुसरण करना चाहिए।

ख. संतोष — सामर्थ्य अनुरूप कर्म करना तथा उसका जो भी प्रतिफल मिले उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना ही संतोष है। जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं है वह एकाग्र नहीं हो सकता। जिसने कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है वही पूर्णतः संतुष्ट हो सकता है। संतोष के सन्दर्भ में महर्षि मनु कहते हैं :-

“सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।”¹³

अर्थात् सुख का मूल आधार संतोष है और इसके विपरीत तृष्णा-लालसा दुःखों का मूल कारण है।

ग. तप — सत्य के मार्ग पर चलते हुए मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं का धैर्यतापूर्वक सामना करना तप है। सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा जय-पराजय में समभाव रखना ही तप है। महर्षि वेदव्यास कहते हैं— **‘तपो द्वन्दसहनम्।’** अर्थात् अपने सद-उद्देश्य की सिद्धि में जो भी कष्ट, बाधाएँ तथा प्रतिकूलताएँ आए उनको सहजता से स्वीकार करते हुए निरंतर बिना विचलित हुए अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना तप कहलाता है।

घ. स्वाध्याय— स्वाध्याय से तात्पर्य है — स्वः—अध्ययन अर्थात् अपना अध्ययन, अपने आप को पढ़ना, अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में चिन्तन—मनन करना एवम् रोज-रोज स्वयं की गलतियों पर दृष्टि डालते हुए उसमें सुधार का प्रयत्न करना। महर्षि व्यास कहते हैं— **‘प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राणां अध्ययनं वा’** अर्थात् प्रणव ओमकार का जप करना तथा मोक्ष की ओर ले जाने वाले वेद, उपनिषद् आदि जो सत्यशास्त्र हैं, इनका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है।

ङ. ईश्वर प्रणिधान — जो व्यक्ति अहंकारवश सारा संसार अपने सिर पर लिये घुमता है वह कभी एकाग्रचित्त नहीं हो सकता। महर्षि व्यास कहते हैं। **‘तस्मिन् परमगुरौ सर्वक्रियाणामर्पणम्’** अर्थात् उन गुरुओं के भी गुरु, परम गुरु परमात्मा में अपने समस्त कर्मों का अर्पण कर देना अर्थात् उसकी समस्त क्रियाओं का मुख्य ध्येय ईश्वर अर्पण होगा इसीलिए सच्चा साधक सिर्फ वही कार्य करेगा जो शुभ है, जो दिव्य है तथा पवित्र है। जिसे वह भगवान को समर्पित कर सके।

3. आसन — आसन के सन्दर्भ में महर्षि पतंजलि कहते हैं—

‘‘स्थिरसुखमासनम् ।।’’¹⁴

अर्थात् आसन का तात्पर्य शरीर के विशेष स्थिति से है। जिसमें साधक सुखपूर्वक स्थिरता से बहुत काल तक बैठा है। जिसकी सिद्धि के सन्दर्भ में महर्षि पतंजलि जी कहते हैं :-

‘‘ततो द्वन्द्वानभिघातः ।।’’¹⁵

अर्थात् उस आसनों की सिद्धि से (शरीर पूर्णरूप से संयत हो जाने के कारण) शीतोष्णादि द्वन्द्व बाधा नहीं करते। जप-तप, ध्यानादि उपासना के लिए आसन का अभ्यास अति आवश्यक है।

4. प्राणायाम — प्राणायाम के सन्दर्भ में महर्षि पतंजलि कहते हैं :-

‘‘तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।’’¹⁶

अर्थात् आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध हो जाने का नाम ही प्राणायाम है जिसके तीन अंग निम्नानुसार हैं— **पूरक**— श्वास अन्दर

लेना, **कुम्भक**— श्वास अन्दर रोकना तथा **रेचक**— श्वास बाहर निकालना। इसके अभ्यास से नाड़िया शुद्धि होती है पूरे शरीर में प्राण शक्ति का सम्यक संचार होता है इससे शरीर हल्का होता है जिससे हमारा मन शांत होता है और हम अपने लक्ष्य पर ज्यादा केन्द्रित हो पाते हैं, एकाग्रता बढ़ती है व चंचलता शांत होती है और अंततः हम अपने लक्ष्य पर आसानी से पहुंच पाते हैं।

5. प्रत्याहार — प्रत्याहार के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं —

“स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।”¹⁷

अर्थात् इन्द्रियों को बाहरी विषयों से विमुख करके चित्त को वशीभूत कर लेना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार के सिद्धि होने पर प्रत्याहार के समय साधक को बाह्य ज्ञान नहीं रहता। व्यवहार के समय बाह्य ज्ञान होता है क्योंकि व्यवहार के समय साधक शरीरयात्रा के हेतु से प्रत्याहार को काम में नहीं लाता। प्रत्याहार की सिद्धि के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं — “ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।।”¹⁸ अर्थात् प्रत्याहार की सिद्धि से इन्द्रियाँ पूर्णतः वश में हो जाती है अर्थात् इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है।

6. धारणा — धारणा के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं :-

“देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।।”¹⁹

अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म या बाह्य-अभ्यान्तर किसी एक ध्येय स्थान में चित्त को बांध देना अथवा स्थिर कर देना धारणा कहलाता है। धारणा ध्यान की नींव है ज्यों-ज्यों धारणा का अभ्यास सुदृढ़ होगा, ध्यान का अभ्यास भी होने लगेगा।

7. ध्यान — ध्यान के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि जी कहते हैं—

“तत्र प्रत्ययकतानता ध्यानम्।।”²⁰

अर्थात् किसी भी एक ध्येय विषय पर मनन ही ध्यान है अर्थात् ध्येय रूप परमेश्वर में प्रत्यय एकसमानता ज्ञान का एक सा प्रवाह ध्यान है। ध्यान के समय सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय का स्मरण नहीं करना, अपितु उसी अन्तर्यामी ब्रम्ह के आनन्दमय, ज्योतिर्मय एवम् शांतिमय स्वरूप में मग्न हो जाना ध्यान है।

8. समाधि — समाधि के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि जी कहते हैं :-

“तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।”²¹

अर्थात् जिस अवस्था में चित्त की वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाता है तथा उस अवस्था में केवल ध्येय ही रह जाता है वह अवस्था समाधि कहलाती है। ध्यान में ध्याता,

ध्यान तथा ध्येय यह त्रिपुटी रहती है। समाधि में केवल अर्थ मात्र वस्तु यानि ध्येय वस्तु ही रहती है; अर्थात् ध्याता, ध्यान तथा ध्येय तीनों की एकता सी हो जाती है।

उपसंहार –

प्रत्येक समाज में व्यवस्थित रूप से सामाजिक गतिविधियों के संचालन हेतु आदर्श व्यक्तित्व की संकल्पना की गई है। उस आदर्श व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्राप्त कर आदर्श बनने की प्रक्रिया को व्यक्तित्व विकास कहा जाता है। व्यक्तित्व विकास एक महत्वपूर्ण घटक है, जो मानव जीवन को सर्वप्रकारेण आनन्दपूर्ण बनाने में सहायक है। जिसकी प्राप्ति हेतु अष्टांग योग साधना पद्धति सहायक है, जब आप व्यक्तित्व विकास में निवेश करते हैं तो आप एक ऐसे व्यक्तित्व को धारण कर लेते हैं जिस पर न सिर्फ आपको वरन् पुरे समाज को गर्व महसूस होता है जो पूरी दुनिया में सकारात्मक बदलाव ला सकता है।

निष्कर्ष के रूप में हमें यह विदित होता है कि व्यक्तित्व विकास में अष्टांग योग साधना मार्ग पूर्णरूपेण सक्षम है। यह मार्ग पूर्णरूपेण व्यवहारिक है। अष्टांग योग साधना मार्ग मुख्यतः दो भागों में विभक्त है – अंतरंग एवम् बहिरंग। अंतरंग के अंतर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवम् प्रत्याहार आते हैं। जिसका पालन कर हम सामाजिक, शारीरिक एवम् मानसिक उन्नति प्राप्त करते हैं तथा बहिरंग के अंतर्गत धारणा, ध्यान एवम् समाधि आते हैं जिसका पालन कर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करते हैं। वर्तमान समय में मानव भौतिक उन्नति हेतु कई वैज्ञानिक एवम् भौतिक संसाधनों को एकत्रित कर लिये हैं किन्तु जीवन के परम लक्ष्यार्थ को प्राप्त करने में असक्षम हैं। परिणामस्वरूप मानव नकारात्मकता और निराशा का शिकार होते जा रहा है। व्यक्तित्व विकास तथा जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने में अष्टांग योग की अहम भूमिका है जिसके माध्यम से मनुष्य स्वयं को संयमित कर ज्ञान के माध्यम से इतना सक्षम हो जाता है कि उसको यह ज्ञात होता है कि किन विषय-वस्तुओं के मध्य संयोग एवम् वियोग स्थापित करना है।

सन्दर्भ सूची :-

1. विद्याभूषण एवम् डी.आर.सचदेव. *समाजशास्त्र के सिद्धान्त*. नई दिल्ली : किताब महल, 2016, पृ.759
2. सांख्यकारिका 39, 40
3. श्रीमद्भगवद्गीता 4/5
4. शर्मा, के.एन. *मनोवैज्ञानिक विचारधारायें*. आगरा : एच.पी.भार्गव बुक हाउस, 2002, पृ.430
- 5- *व्यक्तित्व को पूर्णता के चरमलक्ष्य तक पहुँचाने वाला योग – Version 1 - May - Awgp.org.*
6. योगसूत्र 2/28
7. वही 2/29
8. वही 3/4
9. मनुस्मृति 4/204
10. योगसूत्र 2/30
11. वही 2/32
12. मनुस्मृति 5/109
13. वही 4/12
14. योगसूत्र 2/46
15. वही 2/48

16. वही 2 / 49
17. वही 2 / 54
18. वही 2 / 55
19. वही 3 / 1
20. वही 3 / 2
21. वही 3 / 3

